INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 2 | MARCH – 2025

प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में साहित्य, सिनेमा और समाज के अर्तसंबंध का अध्ययन

तेजभान सिंह
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. सुरेन्द्र बहादुर सिंह चौहान
प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.)

सारांश –

इस अध्ययन का उद्देश्य प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं के माध्यम से साहित्य, सिनेमा और समाज के अर्तसंबंध का विश्लेषण करना है। प्रहलाद अग्रवाल के साहित्य में समाज की जटिलताओं, असमानताओं और संघर्षों का चित्रण गहराई से किया गया है, और इन रचनाओं में सिनेमा के प्रभाव को भी देखा जा सकता है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे प्रहलाद ने अपने लेखन में साहित्य और सिनेमा दोनों के माध्यम से समाज की समस्याओं और मानवीय संवेदनाओं को उजागर किया। उनका साहित्य समाज के प्रति एक जागरूकता पैदा करता है, वहीं सिनेमा के माध्यम से इन विचारों को अधिक व्यापक दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है। इस पेपर में यह दर्शाया गया है कि साहित्य और सिनेमा दोनों ही सामाजिक बदलाव को प्रेरित करने के सशक्त उपकरण हैं और दोनों के बीच का संबंध समाज की वास्तविकताओं को समझने में सहायक होता है। प्रहलाद की रचनाओं में समाज, सिनेमा और साहित्य के बीच एक स्थायी संवाद स्थापित किया गया है, जो समाज में सकारात्मक बदलाव लाने में सहायक हो सकता है।

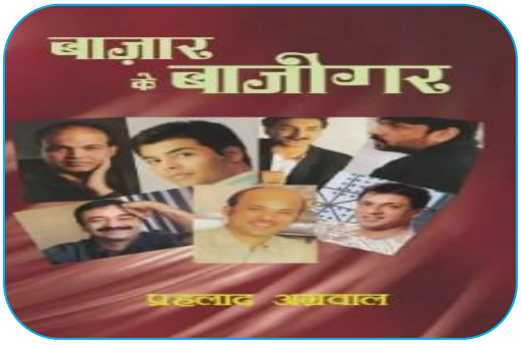

मुख्य शब्द – प्रहलाद अग्रवाल, साहित्य, समाज, अर्तसंबंध जागरूकता एवं सामाजिक संघर्ष।

प्रस्तावना –

सिनेमा पर प्रहलाद अग्रवाल का लेखन बहुआयामी है। प्रहलाद अग्रवाल के अनुसार समकालीन हिंदी साहित्य और सिनेमा के बीच मधुर रिश्तेदारी सिनेमा की शुरुआत से लेकर आज तक नहीं बन सकी। प्रेमचंद से लेकर शिवमूर्ति तक यह सिलसिला अविराम जारी है। पर तब भी लेखक की यह सहज इच्छा होती है कि, उसकी कृति का मंचन हो और जो फिल्म बने तो सोने में सुहागा ही समझिए। सिनेमा की कटु आलोचना करने वाले लेखकों की भी अपनी कृतियों के फिल्मांकन की आकाक्षा होती है। यदि किसी लेखक की कृति पर कोई अपरिचित–सी फिल्म का भी निर्माण हो जाता है तो उसका उल्लेख उसके परिचय में उपलब्धि बतौर किया जाता हुआ देखा जा सकता है। सिनेमा को साहित्य से जोड़ने की कोशिशों की असफलता में इस दोगली मानसिकता की बड़ी कड़वी भूमिका है।

फिल्म निर्माण और लेखन दो नितांत भिन्न रचना–प्रक्रियाएँ हैं। लेखन व्यक्तिगत रचनाकर्म है जिसमें धन की भूमिका नगण्य है। फिल्म निर्माण सामूहिक रचनाकर्म है, जिसमें सृजन हेतु अपार धनराशि आवश्यक है, इसलिए उसका व्यावसायिक कला बनना लाजिमी है। इसमें अभिनेताओं, गायकों, वादकों सहित छायाकार, कला–निर्देशक, संपादक, वेशभूषा संयोजक, मेकअप आर्टिस्ट आदि अनेकानेक कलात्मक विधाओं में पारंगत व्यक्तियों का योगदान होता है। इस समूची मंडली की बागडोर निर्देशक के हाथ में होती है। वही 'कैप्टन ऑफ द शिप' है। कथाकार यहाँ उसका सहयोगी ही बन सकता है। संपूर्ण फिल्म का समायोजन निर्देशकीय दृष्टि के अनुरूप ही होता है। वही सिनेमा का प्रथम पुरुष है। कथाकार तब ही सर्वोपरि हो सकता है जब वह स्वयं निर्देशक भी हो। पर तब भी उसे अपने कथाकार को आधारस्वरूप ही ग्रहण करना होगा। इसलिए साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन के लिए सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि, ऐसे निर्देशक के हाथ में बागडोर हो जिसका साहित्य में परिचय हो और वह कृति में डूबकर उसे विराट फलक दे सके। वह सिर्फ आर्थिक उपलब्धियों के लिए समर्पित न हो, फिल्म व्यवसाय की भी गहरी समझ रखता हो। इसीलिए यह काम दुधारी तलवार पर चलने की तरह होता है।[1] तिरिया चरित्तर का प्रदर्शन भी सही ढंग से संभव नहीं हो सका था और यह कब आई और चली गई, इसके संभावित दर्शकों को पता ही नहीं चला। यहाँ तक कि 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा' में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है और न ही बासु चटर्जी की फिल्मोग्राफी में ही। सातवें दशक में जबरदस्त रूप से उभरकर सामने आया समानांतर सिनेमा इसी व्यावसायिक नासमझी के कारण अकाल काल–कवलित हुआ। इसने अपने लिए सिनेमाघरों का कोई नया तंत्र खड़ा नही किया और व्यावसायिक सिनेमा के बीच अपनी जगह खोजने में भी वह नितांत असफल हुआ। इसीलिए इससे उभरकर आने वाली अनेकानेक अप्रतिम प्रतिभाएं या तो खो गईं या तो सिनेमा की मूलधारा में ही अपनी जगह तलाशने को मजबूर हुईं।

विश्लेषण –

इक्कीसवीं सदी में मल्टोप्लैक्स संस्कृति ने सिनेमाई व्यापार को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया है और सिनेमा की कमाई सिर्फ व्यावसायिक प्रदर्शनों तक सीमित नहीं रह गई है। आज फिल्में बीसों तरह से कमाती हैं। प्रदर्शन और संगीत बिक्री से ही नहीं, सैटेलाइट्स और डीवीडी राइट्स, टेलीविजन प्रदशन, मोबाइल रिंगटोन, ब्राण्ड इंडोर्समेंट जैसे अनेक चोचले कमाई के साधन हैं। आज दो से पाँच करोड़ लागत की अनेक ऐसी फिल्में बन रही हैं जो 90 से 120 मिनिट की समयावधि की होती है और प्रदर्शन के पहले तीन दिनों में ही फायदे का सौदा बन जाती हैं। इसलिए आज शिवमूर्ति जैसे कथाकारों की कृतियों पर नए कलाकारों के साथ दृष्टिसम्पन्न निर्देशक न केवल सार्थक अपितु लाभदायक फिल्मों को भी अंजाम दे सकते हैं। जाहिर है इसके लिए कलात्मक कौशल के साथ व्यावसायिक चातुर्य भी अपरिहार्य है। यदि हम सचमुच साहित्यक कृतियों के फिल्मांकन के आकांक्षी हैं तो महज आलोचनात्मक दृष्टि से सिनेमा को देखने की जगह समझदारी से इस दिशा में रचनात्मक प्रयासों की आवश्यकता है। आज भी अपनी तरह का एक नया सिनेमा सामने आ रहा है। पिछले एक दशक में फिराक, भेजा फ्राई, मकबूल, खोसला का घोंसला, बीइंग सायरस, मिस्टर एंड मिसेज अय्यर जैसी निहायत छोटी लागत से बनाई गई पचासों फिल्मों ने नया इतिहास रचा है।

आज साहित्यिक कृतियों पर या गंभीर संवेदनशील सामाजिक विषयों पर फिल्म बनाना जितना आसान है उतना पहले कभी नहीं रहा। आज यह पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित भी है। आज एक फिल्म कई–कई तरीकों से धन वसूल करती है। यह माध्यम ही ऐसा है जिसमें आप बाजार को नजरअंदाज कर ही नहीं सकते। ये सच्चाई हर प्रदर्शनकारी कलात्मक अभिव्यक्ति के सामने मुकाबले के लिए खड़ी होती है। फिर सिनेमा तो वह कलारूप है जिसमें कविता, कहानी, संगीत से लेकर चित्रकला, मूर्तिकला आदि तमाम विधाएं एक साथ गूंथ दी जाती हैं। इसके साथ ही पूरा तकनीकी तामझाम तरह–तरह के उपादानों सहित जुड़ता है। इसलिए किसी फिल्म का निर्माण ही नहीं उसे दर्शकों तक पहुंचाने का उपक्रम भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आज के उपभोक्तावादी विश्व बाजार में तो इससे निष्कृति ही नहीं हैं। पर यह भी कतई नहीं है कि बाजार में इस अपसंस्कृति का मुकाबला किया ही नहीं जा सकता। यदि ऐसा होता तो पेज 3 कभी सुपरहिट नहीं होती। सारा आकाश, रंजनीगंधा, पार, अंकुर, भूमिका, चक्र, स्पर्श, गरम हवा, सारांश, कथा जैसी फिल्मों के लिए आज की तरह उपयुक्त वातावरण कभी नहीं था। यदि रोजगार के लालच से मुक्त होकर अपने यकीन पर कायम रहते हुए फिल्मकार पूरी आस्था से इस तरह की अर्थपूर्ण भावमय फिल्में बनाता है तो मल्टीप्लैक्स ही उनके लिए

वरदान साबित हो सकते हैं। हिंदी सिनेमा में लालच और कुत्सा का रात भले ही संगीन नजर आ रही हो लेकिन इस रात की सुबह रंगीन होगी, ये नौजवान हौसलों की उमंगें इशारे कर रही हैं। ये हिंदी में एक नई सिनेमाई संस्कृति कायम करके रहेंगे।[2]

साहित्य और सिनेमा का बुनियादी संबंध है। इस तरह सिनेमा का आरम्भ साहित्य से हुआ जिनमें सांस्कृतिक वैभव की छटा लिखी हुई है। सिनेमा की मुख्य कथा का मूल अधार साहित्य ही है। सिनेमा में साहित्य की भूमिका अनिवार्य है। जिसे हम साहित्य में विश्व दृष्टि कहते हैं, वह फिल्म में तीन स्तरों पर काम करती है। पहला, फिल्मकार के उन विचारों में जो वह फिल्म के माध्यम से प्रचारित करना चाहता है। दूसरा, फिल्म के उन छवियों में, जिन्हें फिल्मकार विचार संप्रेषण के लिए चुनता है और तीसरा, उन तकनीकों में जिनका इस्तेमाल फिल्म को फिल्माने से लेकर दिखलाने तक के लिए किया जाता है। अभिव्यक्ति और संप्रेषण का रिश्ता द्वंद्वात्मक होता है। विचार का यथार्थ से और यथार्थ का उन विवरणों से बहुत सघन रिश्ता होता है, जिनका प्रयोग यथार्थ की संरचना के लिए किया जाता है।[3]

प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में साहित्य, सिनेमा, और समाज के बीच गहरा अंतर्संबंध स्थापित होता है। उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य सिनेमा को एक संपूर्ण कला के रूप में देखना और इसे साहित्य व समाज के साथ जोड़कर उसकी व्यापक भूमिका को समझना रहा है। प्रहलाद अग्रवाल के अनुसार, सिनेमा केवल एक मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह साहित्यिक और सामाजिक तत्वों का सम्मिलन है, जो समाज पर गहरा प्रभाव डालता है। प्रहलाद अग्रवाल के लेखों में निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है –

1. साहित्य और सिनेमा का मेल – प्रहलाद अग्रवाल का मानना था कि सिनेमा और साहित्य के बीच एक प्राकृतिक संबंध है। उनकी रचनाओं में इस बात पर जोर दिया गया है कि एक सफल फिल्म की बुनियाद एक सशक्त कथा पर होती है, जो साहित्यिक गुणों से युक्त होती है। उन्होंने इस तथ्य को कई उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि जैसे मुंशी प्रेमचंद, रविन्द्रनाथ ठाकुर, और अन्य साहित्यकारों की कहानियाँ और उपन्यास सिनेमा के लिए प्रेरणा बने। साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा में गहराई और यथार्थ को लेकर आती हैं, और सिनेमा इन्हें दृश्य माध्यम से प्रस्तुत कर व्यापक जनसमूह तक पहुँचाता है।

2. सिनेमा के माध्यम से सामाजिक प्रतिबिंब – प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में सिनेमा को समाज का दर्पण माना गया है। उन्होंने सिनेमा को समाज में होने वाले बदलावों, असमानताओं, संघर्षों और समस्याओं को उजागर करने का एक सशक्त माध्यम कहा है। जैसे, उनकी लेखनी में 1950 और 60 के दशक की फिल्मों का उदाहरण मिलता है, जिनमें भारतीय समाज में स्वतंत्रता क बाद के बदलावों को दिखाया गया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सिनेमा समाज में बदलाव और जागरूकता लाने का साधन बन सकता है। उनकी रचनाओं में 'दो बीघा जमीन', 'प्यासा', और 'मदर इंडिया' जैसी फिल्मों का विश्लेषण मिलता है, जो समाज के मुद्दों को प्रभावी तरीके से उठाती हैं।

3. साहित्यिक दृष्टि से चरित्र निर्माण और संवाद – प्रहलाद अग्रवाल ने सिनेमा में साहित्यिक तत्वों का विशेष महत्व माना है, विशेष रूप से चरित्र निर्माण और संवाद लेखन में। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जैसे साहित्य में पात्रों की गहराई और उनके संवादों का महत्व होता है, वैसे ही सिनेमा में भी यह आवश्यक है कि पात्रों का चित्रण वास्तविकता के करीब हो। उन्होंने कहा कि बेहतरीन संवाद और पात्रों का विकास, जो साहित्यिक आधार से आते हैं, दर्शकों के मन में स्थायी प्रभाव डालते हैं। इसके उदाहरण में उन्होने कई फिल्मों का विश्लेषण किया जिनमें पात्रों का चित्रण साहित्यिक आधार पर किया गया, जैसे 'शोले' में ठाकुर और गब्बर का चरित्र।

4. सिनेमा का सांस्कृतिक प्रभाव – प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में सिनेमा को एक सांस्कृतिक माध्यम के रूप में देखा गया है। उन्होंने सिनेमा को भारतीय संस्कृति, परंपराओं, और सामाजिक मूल्यों के संचार का माध्यम बताया। उनकी लेखनी में यह उल्लेख मिलता है कि किस तरह भारतीय सिनेमा ने भारतीय संस्कृति को संरक्षित करने और उसे जन–जन तक पहुँचाने में योगदान दिया है। उदाहरण के लिए, उन्होंने राज कपूर और बिमल रॉय की फिल्मों का उल्लेख किया, जिनमें भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्यों का चित्रण था।

5. साहित्य, सिनेमा और समाज का त्रिकोणीय संबंध – प्रहलाद अग्रवाल के अनुसार, साहित्य, सिनेमा और समाज एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हैं। साहित्य समाज की वास्तविकताआ को शब्दों में ढालता है, सिनेमा इसे दृश्यों में प्रस्तुत करता है, और यह समाज में चेतना और विचारों का संचार करता है। उन्होंने इस त्रिकोणीय

संबंध को अपनी लेखनी में स्पष्ट किया है और इस पर जोर दिया कि एक मजबूत सिनेमा वही है जो समाज की समस्याओं और बदलावों को साहित्यिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करे। इसके लिए उन्होंने बिमल रॉय, ऋषिकेश मुखर्जी और श्याम बेनेगल जैसे निर्देशकों का उल्लेख किया है, जिनकी फिल्मों में समाज की जटिलताएँ साहित्यिक दृष्टिकोण से जुड़ी हुई मिलती हैं।

6. सामाजिक और साहित्यिक संवेदनाओं का चित्रण – प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में सिनेमा को समाज की संवेदनाओं को चित्रित करने का माध्यम माना गया है। उन्होंने लिखा कि सिनेमा में साहित्यिक संवेदनाएँ समाज की कठिनाइयों, भावनाओं, और मूल्यों को दर्शाने का काम करती हैं। वे कहते हैं कि समाज म बढ़ती असमानता, गरीबी, भेदभाव और संघर्ष जैसे मुद्दों को सिनेमा साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करता है और इसे दर्शकों के सामने वास्तविकता के रूप में पेश करता है।

7. साहित्यिक कृतियों का सिनेमा पर प्रभाव – प्रहलाद अग्रवाल ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया कि कैसे साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा को प्रेरित करती हैं और कैसे साहित्य से प्राप्त विषय सिनेमा में अलग–अलग तरह से प्रस्तुत किए जाते हैं। उनकी रचनाओं में यह दृष्टिकोण मिलता है कि साहित्यिक कृतियों का सिनेमा में रूपांतरण न केवल कहानी का रूपांतरण होता है, बल्कि उसके विचार, सवेदनाएँ और उद्देश्य भी बदलते हैं। इसके उदाहरण में उन्होंने कई फिल्म रूपांतरणों का विश्लेषण किया है, जैसे 'देवदास' और 'गोदान, जो साहित्य से सिनेमा में बदलते समय नए सामाजिक संदेशों को प्रस्तुत करती हैं।

8. लोकप्रिय सिनेमा और साहित्य का द्वंद्व – प्रहलाद अग्रवाल ने लोकप्रिय सिनेमा और साहित्य के बीच द्वंद्व का भी विवेचन किया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जहाँ एक ओर लोकप्रिय सिनेमा मनोरंजन प्रधान होता है, वहीं साहित्य और कला सिनेमा गहराई और विचार प्रदान करते हैं। उनके अनुसार, लोकप्रिय सिनेमा में साहित्यिक तत्वों का अभाव होने पर समाज के वास्तविक मुद्दे और चिंतनशील विषय अक्सर अनदेखे रह जाते हैं। उन्होंने इस मुद्दे पर लिखा कि कैसे कुछ फिल्में साहित्यिक दृष्टिकोण को अपनाकर भी लोकप्रियता प्राप्त कर सकती हैं, जैसे कि 'गाइड' और 'साहब बीवी और गुलाम।'

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रहलाद अग्रवाल की रचनाओं में साहित्य, सिनेमा और समाज के बीच अंतर्संबंध को गहराई से समझाया गया है। उनकी दृष्टि में सिनेमा साहित्य और समाज से जुड़े मुद्दों को व्यापक दर्शकों के सामने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। उनका लेखन यह बताता है कि सिनेमा केवल एक कला नहीं है, बल्कि यह साहित्य और समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो समाज में जागरूकता और परिवर्तन का माध्यम बन सकता है।

संदर्भ –

1 विवेकानन्द – साहित्य और सिनेमा रूपांतरण, पृष्ठ 27
2 संपादक प्रदीप चौबे – प्रहलाद अग्रवाल : सिनेमा, साहित्य और समाज, पृष्ठ 89
3 विवेकानन्द – साहित्य और सिनेमा रूपांतरण, पृष्ठ 15